भारतीय सहकारिता आन्दोलन अतीत से वर्तमान की ओर–एक विश्लेषण

डॉ0 किरण कुमारी*

किसी कारोबार को चलाने में एक–दूसरे की मदद लेने की परंपरा बहुत पुरानी है। आधुनिक सहकारिता आन्दोलन की शुरूआत 1844 के अंत में रोडशेल इक्विटेबल पायनियर्स की स्थापना से मानी जाती है। रोशडेल सहकारी समिति बुनकरों ने बनायी थी। इसका अनुकरण कर अनगिनत समितियाँ इंग्लैंड और कई अन्य देशों में बनी। इस समिति के उद्देश्य अनेक और दूरगामी महत्व के थे। इनमें कपड़े और सामान की बिक्री के लिए आवासों का निर्माण, कार्यशालाएँ खोलना, रोजगार देने के लिए खेती के फार्म खरीदना और आत्म निर्भर आवासीय कालोनियाँ बनाना आदि शामिल था। इनमें राजनीतिक और धार्मिक निष्पक्षता होती थी। सदस्यों को सहकारिता की शिक्षा देना सहकारिता के सिद्धाँतों का मूल है।

प्राचीन भारत के लोगों की सामाजिक आर्थिक गतिविधियाँ सहकारिता के आधार पर संचालित की जाती थी, जो चार आधारों पर निर्भर थी। ये आधार थे – कुल, ग्राम, श्रेणी और जाति। कुल के अन्तर्गत रिश्ते–नातेदार और मित्र आदि शामिल थे। ग्राम स्तर पर सहकारिता का मतलब था ग्राम सभा जो ग्रामीणों, खास तौर पर किसानों तथा हस्तशिल्पयों के विकास के लिए कार्य करती थी। रेणी व्यापारियों, हस्तशिल्पियों, महाजनों और ब्राह्मणों की संस्था को कहा जाता था। जाति के आधार पर सहयोग अक्सर सामाजिक कार्यों के लिए किया जाता था। जाति के आधार पर सहकारिताएँ, व्यवसायों/शिल्प–समुदायों की होती थी।

19वीं0 शताब्दी के उत्तरार्ध में ग्रामीण ऋणग्रस्सता की समस्या बड़ी गंभीर हो गयी और काश्तकारों की जमीन जमीनदारों के पास चले जाना एक आम बात हो गयी। राज्य की ओर से दिये जाने वाले तकावी ऋणों का अनुसरण अँग्रेजों ने किया लेकिन वे इसका अधिक उपयोग नहीं कर सके। दक्षिणी किसान राहत अधिनियम (1879), भूमि सुधार ऋण अधिनियम (1883), किसान ऋण अधिनियम (1884) ग्रामीणों की ऋणग्रस्तता को दूर करने की दिशा में उठाये गये कुछ महत्वपूर्ण कदम हैं। अधिनियमों के असफल हो जाने से किसानों की जो दुर्दसा हुई उससे किसानों को कर्ज देने के लिए वैकल्पिक एजेंसी की आवश्यकता महसूस हुई।

हालाँकि कानून में शहरी समितियों के गठन का प्रावधान था, लेकिन सहकारिता आन्दोलन के पहले चरण के दौरान जो सहकारी समितियाँ गठित की गई उनमें से अधिकतर ग्रामीण ऋण सहकारिताएँ थी। आन्दोलन का गैर–ऋण सहकारी समितियों के क्षेत्र में विस्तार करने के लिए 1912 का सहकारी समिति अधिनियम पारित किया गया। सर ई0 डी0 मैकलैंगन की अध्यक्षता में गठित सहकारिता संबंधी समिति ने सहकारिता शिक्षा, लेखा परीक्षा और पर्यवेक्षण में सहयोग की आवश्यकता पर जोर दिया। 1919 के सुधार अधिनियम के बाद सहकारिता एक मंत्री के अन्तर्गत प्रांतों का हस्तांतरित विषय बन गया। 1929 में धारवाड़, भरूच और पचोरा में भूमि बंधक रखने वाले बैंक बनाए गए। एक अन्य महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि औद्योगिक सहकारी संस्थाएँ और सहकारी आवास समितियाँ बनी। कृषि के बारे में रॉयल कमीशन ने सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिए सरकार की ओर से सहायता की जोरदार वकालत की। 1930 के दशक की महामंदी के दौर में सहकारिता आन्दोलन को जबरदस्त धक्का लगा। इस दौरान देनदारियाँ बढ़ गयीं और कई समितियाँ धराशयी हो गयी।

सहकारिता आन्दोलन के इतिहास में 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सहकारिता आन्दोलन ने जोड़ पकड़ा। इस अवधि में गैर–ऋण समितियों की ओर रूझान भी दिखाई दिया। देश को स्वतंत्रता मिलने और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में सहकारिता की भावना को समाहित किये जाने से भी भारत में सहकारिता आन्दोलन को और बढ़ावा मिला। सामुदायिक विकास परियोजनाएँ, राष्ट्रीय विस्तार सेवा और पंचवर्षीय योजनाओं से आधुनिक भारत में सहकारिता आन्दोलन को और बढ़ावा मिला। सामुदायिक विकास परियोजनाएँ, राष्ट्रीय विस्तार सेवा और पंचवर्षीय योजनाओं से आधुनिक भारत में सहकारिता आन्दोलन के लिए नये रास्ते खुले। 1954 में ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों को लागू करने से राज्य नीति के अंग के रूप में सहकारिता को बढ़ावा देने से सहकारिता के विकास की नयी नीति की बुनियाद पड़ी।

सहकारिताओं की आंतरिक और संरचनात्मक कमजोरियों, व्यापक क्षेत्रीय असंतुलनों तथा उन्हें समुचित नीतिगत सहायता न मिलने से उनका सकारात्मक प्रभाव समाप्त हो जाता है। इससे सहकारिताओं के बारे में स्पष्ट राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता उजागर हो जाती है। सरकार ने अप्रैल 2002 में सहकारिता के बारे में जिस राष्ट्रीय नीति की घोषणा की है उसका उद्देश्य और विशेषताएँ इस प्रकार हैं – इसके अंतर्गत सहकारिताओं को आवश्यक सहायता, प्रोत्साहन और सहयोग प्रदान किया जाएगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे स्वायत्त, आत्म–निर्भर और लोकतांत्रिक तरीके से संचालित ऐसी संस्थाओं की तरह कार्य कर सकें जो अपने सदस्यों के प्रति उत्तरदायी हो और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान कर सकें।

भारत में विभिन्न प्रकार की 545 हजार सहकारिताएँ हैं जिनकी सदस्य संख्या 23 करोड़ है जो दुनिया में सबसे अधिक है। देश के शत्–प्रतिशत गाँव और 75 प्रतिशत

*पी–एच0 डी0 इतिहास विभाग बी0 एन0 एम0 यू0, मधेपुरा

परिवार इसके दायरे में आते हैं। पिछले 100 साल से भी अधिक समय से सहकारिता ने देश के लिए खास तौर पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए व्यापक योगदान दिया हैं उनकी उपलब्धियों और उनके जबरदस्त फैलाव के बावजुद सहकारिताओं के समक्ष कई वित्तीय संगठनात्मक और प्रबंधन संबंधी मसले हैं। आर्थिक सुधारों, वैश्वीकरण, विश्व–व्यापार संगठन व्यवस्था आदि के संदर्भ में कुछ बातें सहकारिता के विकास के लिए प्रासंगिक बनी हुई है। जैसे कि प्रतिस्पर्धा और उदारीकरण के युग में क्या सहकारिताएँ अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है ? क्या सरकार सहकारिताओं को सहायता और सहयोग जारी रखेंगी ? भारतीय राष्ट्रीय सहकारिता संघ ने सहकारिता को सफल बनाने के लिए उनकी गतिविधियों के कई क्षेत्रों की पहचान की है। जैसे–कृषि ऋण, विपणन, कृषि आधारित उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण, पशुपालन और डेयरी, ग्रामीण विकास, गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्तिरण, सिंचाई पर्यावरण संरक्षण, ग्राम और लघु उद्योग, ग्रामीण विद्युतीकरण, जनजातियों का विकास आदि।

भारत में सहकारिता ने 1904 में अपने उदय से लेकर अबतक के सौ सालों के दौरान लंबी और कठिन यात्रा तय की है। लेकिन आज भी यह चौराहे पर है। भारत के विभिन्न भागों में अपनी उपलब्धियों और अभूतपूर्व विकास के बावजूद सहकारिता अनेक वित्तीय सांगठनिक एवं प्रबंधकीय अवरोधों और समस्याओं से ग्रस्त है। यह स्थिति विनियमों और लाइसेंसो से मुक्ति, खुलेपन, निजीकरण और वैश्वीकरण के आधुनिक युग में है। नये युग में उत्पन्न नवीन चुनौतियों का मुकाबला तथा विकास कर पाने की उनकी सामर्थ्य को लेकर अनेक विद्धानों तथा नीति निर्माताओं ने गंभीर आशंकाएँ व्यक्त की है। ग्रामीण ऋण उपलब्ध कराने के मामले में ग्रामीण ऋण सहकारी संस्थाओं की केन्द्रीय भूमिका होती है। जबकि शहरी सहकारी बैंकों का लक्ष्य मध्य तथा निम्न माध्यम आयवर्ग की बचत इकट्ठा करना तथा कमजोर वर्गों को ऋण उपलब्ध कराना होता है। ग्रामीण लोगों को ऋण उपलब्ध कराने का दायित्व यदि केवल व्यावसायिक बैंकों पर छोड़ दिया गया होता और यदि ग्रामीण ऋण सहकारी संस्थाओं का अस्तित्व नहीं होता तो अनेक ग्रामीण इलाकों में संस्थागत ऋण उपलब्ध ही नहीं हो पाता।

भारत में सहकारी बैंकिग प्रणाली के ग्रामीण सहकारी समितियाँ, शहरी सहकारी बैंक, लघु अवधि एवं मध्यम अवधि ऋण के लिए राज्य स्तरीय संघ तथा दीर्घ अवधि ऋण के लिए राष्ट्रीय संघ जिन्हें राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है, शामिल है। यह सभी बैंक आज कड़े मुकाबले का सामना कर रहे हैं और प्रश्न यह उठता है कि इस सतत उदारीकृत आर्थिक वातावरण में कौन बचा रहेगा ? उत्तर स्पष्ट है, जो स्वास्थ्य या उपयुक्त है और बदले वातावरण के अनुरूप बदलने को तैयार है वही बचेगा।

महान महापुरुष महात्मा गाँधी के शब्दों में सहकारिता आन्दोलन भारत के लिए उसी हद तक हितकर होगा, जिस हद तक वह नैतिक आन्दोलन रहेगा और उसका

पूर्ण धार्मिक लगन के हों। भारत में सहकारिताओं का दुनिया में सबसे बड़ा नेटवर्क है, जो ग्रामीण क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यापारिक संगठनों के रूप में सहकारी समितियाँ इस वर्ष भारत में अपने जन्म के सौ वर्ष पूरे कर रही है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा लाए गए विश्व व्यापार के लए दौर के परिप्रेक्ष्य में सहकारिताएँ अपनी उत्तरजीविता और प्रगति के लिए एक नई दिशा और एक नए दृष्टिकोण की तलाश में है। भारत में, और विकसित व विकासशील देशों में भी, सहकारिताओं को मानव समाज विशेषकर इसके ग्रामीण क्षेत्र के समग्र विकास के लिए एक क्षमतावान साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। भारत में लगभग शत्–प्रतिशत गाँवों और करीब 67 प्रतिशत परिवारो की भागीदारी के साथ सहकारिताएँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान रखती है। डेयरी चीनी और कृषि जैसे क्षेत्रों में सहकारिताओं ने पिछले सौ वर्षों के दौरान उल्लेखनीय प्रगति की है। इसका तात्पर्य यह कतई नहीं है कि भारत में सहकारी आन्दोलन के साथ सब कुछ ठीक–ठाक है। वित्तीय संगठनात्मक और पंबंधकीय क्षेत्रों में वे निश्चित ही कई रूकावटों का सामना कर रहें हैं।

अंत में एक तथ्य जो सहकारिताओं पर अध्ययनों से स्पष्ट तौर पर सामने आता है, चाहे वो सहकारी बैंक हो या फिर विपणन सहकारिताएँ वो है उन्हें शासित और निमंत्रित करने वाले व्यक्तियों में पेशेवर प्रबंधन दक्षता का अभाव। इसका प्रमुख कारण अत्यधिक सरकारी नियंत्रण और सहकारिताओं को स्वतंत्र निर्णय और दिशा निर्देश तय करने के अधिकारों का अभाव रहा है। भारतीय सहकारिताएँ स्वभाव से एकरूप नहीं है। इनमें से अधिकतर सरकारी वित्तपोषण पर आधारित हैं इसलिए उदारीकरण का प्रभाव सभी सहकारिताओं पर एक नहीं होगा। उदारीकरण ने एक प्रतियोगी बाजार को जन्म दिया है और उच्चस्तरीय प्रौद्योगिकी एवं लागत प्रभावी तकनीकों वाले खिलाड़ी अर्थव्यवस्था में उभरकर आए है। भारतीय सहकारिताओं के लिए इस उभरते प्रतियोगी बाजार की चुनौतियों का सामना करने के लिए स्वयं को ढ़ालना और परिवर्त्तन लाना अत्यावश्यक है। इस प्रकार, हालाँकि सहकारिताएँ अधिकारिता और लोगों के बीच संपत्ति के समान वितरण के लिए प्रभावी एजेंसी साबित हुई है, किन्तु आम आदमी की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए उन्हें अभी लंबा रास्ता तय करना है। स्वयं को ग्रामीण क्षेत्र के विकास का सक्षम और कुशल साधन बनान के लिए सहकारिताओं को अपनी गतिविधियों के पुनर्गठन और अपनी विचारधाराओं को पुनः परिभाषित करना होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(1) के0 एस0 सेलीमेकर–प्राबल्म ऑफ इंडिया–1940, पेज नं0–95
(2) रिव्यु ऑफ द इकॉपरेटिव मुवमेंट ऑफ इंडिया–1930–40, पेज नं0–7
(3) आजाद गुलाब सिंह–महिला विकास और सहकारिता–कुरूक्षेत्र, दिसम्बर, 1977
(4) धनंजय चोपड़ा–भारत का ग्रामीण शैक्षिक परिवेश